National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(67): 131-134
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. सोनिका कौशल
(Ph.D, Net Set Qualified)
हिन्दी विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय

Correspondence:
डॉ. सोनिका कौशल
(Ph.D, Net Set Qualified)
हिन्दी विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय

दलित स्त्री सशक्तिकरण का दस्तावेज़ : दोहरा अभिशाप

डॉ. सोनिका कौशल

सारांश

भारतीय समाज में वर्ण और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्गत दलित स्त्रियाँ मानसिक और शारीरिक रूप से दोहरी प्रताड़ना का शिकार हुई हैं ।दोहरे मापदंडों का सामना करते हुए हमेशा से दलित नारी को हाशिये पर धकेल गया ।विडंबना यह है कि उन्हें अपने दलित समाज ने भी उसी परिप्रेक्ष्य में देखा है ।हिन्दी दलित साहित्य में भी दलित महिला लेखिकाओं की उपेक्षा ही देखने को मिलती है । दलित पुरुष लेखन की तुलना में दलित महिला लेखन उतनी मात्रा में उपलब्ध नहीं है , किन्तु कुछ दलित स्त्री साहित्यकारों ने स्वयं अपने अस्तित्व के लिए कलम उठाई और अपनी लेखनी के माध्यम से अन्य दलित स्त्रियों को जागरूक करने का प्रयास किया ।जिनमें कौसल्या बैसंत्री , रजनी तिलक ,सुशीला टाकभौरे जैसे नाम उल्लेखनीय हैं ।प्रस्तुत आलेख में लिखित आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' पर प्रकाश डाला गया है ।इस आत्मकथा के माध्यम से लेखिका ने दलित स्त्री के दोहरे संघर्ष को दर्शाते हुए उनके स्वाभिमानी रूप में सशक्त स्त्री के चित्र प्रस्तुत किए हैं , जो अन्य दलित स्त्रियों में चेतना जगाने के लिए सहायक सिद्ध होंगे ।

मूलशब्द: आत्मकथा, दलित स्त्री, पितृसतात्मकता, सशक्तिकरण, अस्तित्व, दोहरी प्रताड़ना, स्त्री चेतना, शिक्षा।

प्रस्तावना:

भारतीय समाज में पितृसत्ता एवं जाति दो ऐसी सामाजिक संरचनाएँ है, जिन्होंने स्त्रियों विशेषकर दलित समाज की स्त्रियों के जीवन को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है क्योंकि इन्हें स्त्री होने के साथ साथ दलित होने का दंश भी झेलना पड़ता है। ये दोहरे ,तिहरे शोषण का शिकार होती हैं । दलित साहित्य सामाजिक अन्याय, शोषण और असमानता के विरुद्ध प्रतिरोध का साहित्य है। इसका उद्देश्य न केवल दलित की व्यथा का वर्णन करना है बल्कि सामाजिक समानता ,न्याय, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा की स्थापना करना भी है । समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव एवं असमानता जैसी कुरीतियों का विरोध करते हुए दलित साहित्य ने परिवर्तन की चेतना को मजबूत किया है।इस साहित्यिक धारा को समृद्ध बनाने में अनेक साहित्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिनमें शरण कुमार लिंबाले,ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय,जय प्रकाश कर्दम जैसे नाम उल्लेखनीय हैं। प्रारंभिक दलित साहित्य मुख्यतः पुरुष दलित लेखकों द्वारा ही लिखा गया, उन्होंने जातिगत उत्पीड़न को केंद्र में रखा किंतु वहीं दलित स्त्री के अनुभव उनसे अलग और अधिक जटिल थे वह न केवल जाति के आधार पर बल्कि स्त्री होने के कारण भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का शिकार होती है। इस प्रकार उसके जीवन में दोहरे शोषण (जाति और लिंग) की उपस्थित रहती है । दलित पुरुष साहित्यकारों ने दलित समाज की समस्याओं को सामने रखा परन्तु दलित स्त्री लेखन ने स्वयं के निजी अनुभव, शिक्षा से वंचित होना,व आत्मसम्मान और जाति एवं लिंग के अंतरसंबंध को अपने अनुभव के आधार पर विशिष्ट रूप से व्यक्त किया। इसी आवश्यकता के कारण कौसल्या बैसंत्री,रजनी तिलक , सुशीला टकभौरे, बामा जैसी कई दलित स्त्रियों ने दलित साहित्य की परम्परा को अपने लेखन के माध्यम से आगे बढ़ाया और दलित महिलाओं के दोहरे-तिहरे शोषण, संघर्ष और उनके आत्मसम्मान की आवाज को प्रमुखता से अभिव्यक्त किया।

हालांकि तत्पश्चात् दलित स्त्री लेखन की अनेक चर्चाएं हुईं इस पर कई प्रश्न भी उठे जैसे की यदि दलित साहित्य लिखा जा रहा है तो दलित नारीवाद की अलग से कोई आवश्यकता ही क्या है? इन प्रतिक्रियाओ के उत्तर में सुशीला टकभौरे लिखती हैं- "दलित पुरुष साहित्यकारों के साहित्य में दलित स्त्री का वह पक्ष नहीं आ पाता है कि उनका भी एक व्यक्तित्व है, अस्तित्व है, उसकी अपनी कुछ भावनाएँ हैं , वह भी प्रगति की दौड़ में आगे आना चाहती है और जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष की बराबरी करते हुए अपनी पहचान बनाना चाहती है पुरुष अपनी मानसिकता के आधार पर अपने मापदंडों से स्त्री व्यक्तितव को आंकता है और उसी के आधार पर नारी चित्रण करता है ।" 1926 में जन्मी कौसल्या बैसंत्री का स्थान इस परंपरा में विशिष्ट है, क्योंकि यह हिन्दी में आत्मकथा लिखने वाली पहली दलित महिला हैं । यह एक ऐसी साहसी दलित स्त्री है जिन्होंने अपने जीवन में अनेक चुनौतियों का सामना किया और समाज की अन्य दलित स्त्रियों के उद्धार के लिए 'दोहरा अभिशाप' जैसी आत्मकथा लिखकर एक सशक्त दस्तावेज़ प्रस्तुत किया। इनसे ही प्रेरित होकर अन्य दलित महिलाओं ने अपनी आत्मकथाएं लिखना प्रारंभ किया। लेखिका कहती हैं – "मेरे जैसे अनुभव और भी महिलाओं के होंगे परंतु समाज और परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती हैं और जीवन भर घुटने में जीती हैं । समाज की आँखें खोलने के लिए ऐसे अनुभव लाने की जरूरत है।" प्रस्तुत कृति में लेखिका ने तीन पीढ़ियों अपनी नानी, माँ और स्वयं के साथ हो रहे दोहरे शोषण और उससे मुक्ति पाने के संघर्ष को व्यक्त किया है। आत्मकथा में इन तीनों स्त्रियों के विरोधी व स्वाभिमानी रूपों को चित्रित किया है। भारतीय पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के अस्तित्व और अस्मिता का प्रश्न तब और भी गहरा हो जाता है जब उसे अपने परिवार के साथ साथ सामाजिक वर्णव्यवस्था के कारण भी दोहरे शोषण का शिकार होना पड़ता है।दलित समाज की कौसल्या बैसंत्री को जातीय एवं लिंगभेद के कारण अनेक मानसिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। रचनाकार अपनी व्यथा व्यक्त करती हुई कहती हैं –"अस्पृश्य समाज में पैदा होने से जातीयता के नाम पर जो मानसिक यातनाएं सहन करनी पड़ी इसका मेरे संवेदनशील मन पर असर पड़ा मैंने अपने अनुभव खुले मन से लिखे पुरुष प्रधान समाज औरतों का खुलापन बर्दाश्त नहीं करता, पति तो इस ताक में रहता है कि पत्नी पर अपने पक्ष को उजागर करने के लिए चरित्रहीनता का ठप्पा लगा सके।" लेखिका तत्कालीन समय के दलित समाज में प्रचलित बाल विवाह, व अनमेल विवाह जैसी कुरीतियों व पितृसतात्मक व्यवस्था से मुक्त होने के लिए सर्वप्रथम नानी के संघर्ष को व्यक्त करती है। मात्र आठ वर्ष की आयु में बाल विवाह और तुरंत बाद बाल विधवा होने पर किसी दुहाजू व्यक्ति के साथ बेमेल विवाह करवाना नारी से हुई मानसिक प्रताड़ना को दर्शाता है। नानी वैवाहिक जीवन में अनेक यातनाएं सहन करती हैं वह प्रत्येक दिन नशाखोरी से ग्रस्त पति द्वारा मारीपीटी जाती हैं साथ ही पहली पत्नी से वह शारीरिक प्रताड़ना का शिकार होती हैं लेखिका के अनुसार –"अजोबा रोज़ दारू पीते और अपना गुस्सा आजी पर उतारते थे।" किंन्तु नानी इन प्रताड़नाओ का विरोध कर अपने बेटे और बेटियों के साथ घर छोड़कर पति के इस त्रास से मुक्ति पाती हैं । इसी घटना के चलते वह रास्ते में अपनी तेज बुखार में तपती बेटी को खो भी देती हैं किंन्तु फिर भी बड़े साहस के साथ आगे का सफर तय करती हैं। गरीबी से जूझते हुए नागपुर में ईटें और सीमेंट ढोने का काम करते हुए स्वाभिमान के साथ अपने बच्चों का पालन पोषण करती हैं ।पति के वापिस बुलाने पर बेबाकी से मना करती है, आत्मकथाकार इनके व्यक्तित्व को इस प्रकार चित्रित करती हैं- "आजी हरदम कहा करती थी कि वह अपनी लड़ाई खुद लड़ेगी किसी पर बोझ नहीं बनेगी ।"इस प्रकार आजी का संघर्षरत चरित्र दलित स्त्रियों को स्वाभिमान से जीने की प्रेरणा देता है। स्त्री के चयन- वरण और नकारने की स्वतंत्रता, स्त्री अस्मिता की मुख्य शर्तें हैं। विवेच्य आत्मकथा में दूसरा सशक्त चरित्र कौशल्या की माँ भागीरथी का देखने को मिलता है । उन्हें आर्थिक अभाव के कारण अपने ही दलित समाज तथा व्यापक समाज द्वारा निरंतर प्रताड़ना और उपेक्षा झेलनी पड़ती थी। उदाहरण द्रष्टव्य है- "जब वे (उच्चवर्णीय महिलाएँ) चूड़ियां हाथ में डलवाने माँ के पास आती थी तब वे पुरानी साड़ी पहनती थी और चूड़ियां पहनने के बाद स्नान कर लेती थीं।" आज़ादी से पहले दलित समाज की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय थी। शिक्षा से वंचित होने के कारण वे हर क्षेत्र में पिछड़े हुए थे , किंतु लेखिका की माँ डॉक्टर अंबेडकर की विचारधारा से प्रभावित थी इसलिए उसने अपनी बेटियों को पढ़ाया चाहे जीवन में उन्हें कितना ही संघर्ष क्यों न करना पड़ा हो। वह यह भलीभाँति जान चुकी थी कि शिक्षा ही मुक्ति का माध्यम है । अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए संघर्षरत भागीरथी को दलित समाज के लोगों का भी सामना करना पड़ता है ।अपने ही समाज के लोग उनकी उन्नति के लिए अवरोधक बनते हैं। वह गणपति उत्सव पर उन्हें तंग करने के लिए घर पर पत्थर फेंकते हैं, परन्तु वह अत्यंत साहसिकता से काम लेती है और कभी उनके आगे घुटने नहीं टेकती । लेखिका दलित समाज की ऐसी विडंबना को उद्घाटित करते हुए लिखती है – "बस्ती में कुछ लोग ऐसे भी थे जो हमारा सुधरा हुआ रहन-सहन नहीं सहन कर पाते थे। उनमें हमारे कुछ रिश्तेदार भी थे जो हम पर इसलिए नाराज थे कि हम पढ़ते क्यों हैं , माँ उन्हें अहमियत नहीं देती थी।" इतनी कठिनाइयों को पार कर भागीरथी अपने परिवार को अंधकार,गरीबी,और अस्पृश्य जीवन से मुक्ति दिलाने का संघर्ष करती है। आर्थिक रूप से सफल होने पर समाजसेवा का कार्य करती है। आस पास रहने वाले स्वर्ण लोगों में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करती है। जब भी उन्हें कोई इनकी जाति से अपमानित करता वह उनका कड़ा विरोध करती ,पास के मकान में एक अनपढ़ सवर्ण परिवार के बीच जब भी झगड़े होते वे एक दूसरे को मारवाड़ा जाति से संबोधित करते हुए इस जाति का अपमान करने का प्रयास करते।इस पर बैसंत्री की माँ आक्रोश प्रकट करती है – "अगर यह शब्द आगे से कहेंगे तो वह उनकी अच्छी खबर लेगी। वे डर गए और यह

कहना छोड़ दिया।"इस प्रकार वह आस -पास रहने वाले गरीब और वंचित लोगों के सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अधिकार के लिए दृढ़ता से आवाज़ उठाती है। नानी और माँ के बाद तीसरी पीढ़ी की सशक्त स्त्री पात्र आत्मकथाकार कौसल्या का जीवन अत्यंत संघर्षपूर्ण रहा किन्तु इन्होंने कभी हार नहीं मानी। इन्हें अपने जीवन में आए आर्थिक ,सामाजिक ,और शैक्षिक स्तर पर कई कटु अनुभवों से गुजरना पड़ा । विवेच्य आत्मकथा में लेखिका ने अपने जीवन में जातिगत भेदभाव और पितृसतात्मक मानसिकता से जुड़ी अनेक घटनाओं का उल्लेख खुलकर किया है। बैसंत्री अपने स्कूली दिनों को सांझा करती है कि किस प्रकार निम्न जाति के परिवार से होने के कारण वह अलगाव का अनुभव करती हैं –"मैं अस्पृश्य हूँ इसका मुझे बहुत दुख होता था और मैं हीनता महसूस करती थी। कोई मेरी जाति ना पूछ बैठे इसका मुझे सदैव डर रहता था ,इसलिए मैं अकेली चुपचाप खाने की छूटी में या स्कूल शुरू होने से पहले अलग बैठी रहती थी। लड़कियों के साथ खेलने से भी डर लगता था।" इन पंक्तियों के माध्यम लेखिका ने दर्शाया है कि जातिगत भेदभाव जैसी कुरीतियों के कारण एक बच्चे के मानसिक स्तर पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है ,वह निरतंत्र असुरक्षा और एकाकीपन जैसे दौर से गुजरने लगता है। इसी संदर्भ में रचनाकार एक अन्य मर्मस्पर्शी घटना का उल्लेख करती हैं, विद्यालय में दलित छात्रों के साथ ना केवल सवर्ण बच्चों द्वारा बल्कि शिक्षकों द्वरा भी छुआछूत जैसा अमानवीय व्यवहार किया जाता है । लेखिका बताती हैं कि –"मैं अस्पृश्य हूँ यह भावना मेरे मन से जाती ही नहीं थी ।मुझे स्कूल में रखे पानी के घड़े से पानी निकाल कर पीने से भी डर लगता था ।जब कोई वहाँ नहीं रहता तब मैं जल्दी से पानी निकालकर पीती थी।" दुर्भाग्यवश वर्तमान में भी कई शैक्षणिक संस्थानों पर ऐसी अमनवीय घटनाएँ समाचारों के माध्यम से देखने को मिलती हैं।कई बार ऐसी घटनाओं के परिणाम इतने क्रूर एवं भयावह होते हैं कि वे पीड़ितों के लिए प्राणघातक सिद्ध होते हैं। स्रोतों के अनुसार "अगस्त 2022 में राजस्थान जालोर जिले के सुराणा गाँव में स्थित 'सरस्वती विद्या मंदिर' उच्च प्राथमिक विद्यालय में 9 वर्ष के दलित छात्र द्वरा स्कूल में पानी का घड़ा छू लेने पर स्कूल के संचालक ने बच्चे की इतनी क्रूरता से पिटाई की कि उसकी मृत्यु हो गई।"

इस प्रकार देखा जा सकता है कि 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा न केवल अपने समय तक बल्कि वर्तमान में भी प्रासंगिक है। भारतीय वर्णव्यवस्था ने इतनी मज़बूती से पैर पसारे हैं कि 21वी सदी में भी कुछ क्षेत्रों में ऐसी घटनाएँ देखने को मिल ही जाती है। विडंबना यह है कि शिक्षत लोगों द्वारा भी शिक्षा के मंदिर में ही इस तरह की घटनाएँ घटती हैं ,जो कि पूर्ण रूप से निंदनीय और अस्वीकार्य हैं ।
इतना ही नहीं लेखिका को कई बार सामाजिक व पारिवारिक दोहरी प्रतड़नाओं का शिकार होना पड़ता है ।उनका साइकिल पर स्कूल जाना दलित व सवर्ण दोनों समाज के लोगों को खलता है।कई बार इन्हें साइकिल से गिरने का प्रयास करते हैं और अनेक प्रकार के ताने कसते हैं –"ये हरिजन बाई जा रही है ।दिमाग तो देखो इसका बाप भिखमंगा है ,साइकिल पर जाती है।"

प्रस्तुत आत्मकथा में लेखिका दलित नारियों के प्रति समाज की कुत्सित मानसिकता पर तीखा प्रहार करते हुए उसके दोहरे चरित्र को उजागर किया है। अपने घर तक जल की सुविधा उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से जब वह अपने पिता के साथ मेयर से सहायता मांगने जाती है तब बस्ती के लोग उनके प्रति अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करते हैं -"बाप ही इन्हें लोगों के पास लेकर जाता है ,पैसे कमाने के लिए।" इस प्रसंग के माध्यम से रचनाकार ने यह स्पष्ट किया है कि सामाजिक भेदभाव और हीन मानसिकता व्यक्ति के आत्मसम्मान को कैसे आहत करते हैं ।साहित्यकार बैसंत्री का संघर्ष न केवल सवर्ण समाज तक सीमित था बल्कि इन्हें अपने ही दलित समाज के भीतर भी पुरुषवादी मानसिकता द्वारा कई अत्याचारों का सामना करना पड़ता है।विवेच्य कृति में वह बताती हैं कि किस प्रकार नर्सिंग कोर्स का झांसा देकर अपनी ही बस्ती के चिकित्सालय में कार्यरत एक व्यक्ति द्वरा उसे किसी अनजान पुरुष को सौंपने का प्रयास किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कथित सामाजिक कार्यकर्ता भी उसे अपनी वासना का शिकार बनाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख करके लेखिका समाज के कुछ कुंठित मनोवृति वाले पुरुषों के दोहरे चरित्र और ढोंग का बेबाकी से पर्दाफाश करती हैं । ऐसे लोगों के प्रति आक्रोश प्रकट करती हैं –"कैसा रूप धारण करते हैं ये लोग शील की चादर ओढ़े और अंदर से राक्षस, औरतों को देखकर मानो उनके मुहँ में पानी भर आता है। इन्होंने मेरी उम्र का भी लिहाज नहीं किया था।" उनके अनेक प्रयासों के बावजूद आत्मकथाकर अत्यंत चतुराई व साहस के साथ इन पुरुषों के कुत्सित इरादों को भांप लेती है और इनके चंगुल से निकलकर एक सशक्त एवं आत्मविश्वासी स्त्री होने का जीवंत उद्धारण पेश करती है। यहीं नहीं आगे चलकर कौसल्या बैसंत्री का वैवाहिक जीवन भी अत्यंत दुखद रहा।उनके पति देवेन्द्र एक लेखक और स्वतंत्र सेनानी होने के बावजूद उसे केवल दासी और उपभोग की वस्तु समझते हैं।लेखिका अपनी व्यथा को अभिव्यक्त करते हुए कहती है –"देवेन्द्र कुमार को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी।दफ्तर का काम और लिखना यहीं उसकी चिंता थी मुझे किस चीज की जरूरत है , उसका उसने कभी ध्यान नहीं दिया।"जब उच्च शिक्षित पति द्वारा पत्नी का सम्मान मिलने के बजाय केवल उन्हें उपेक्षित और तिरस्कार मिलता है तो वह सब अत्याचार चुप-चाप सहन ना करके कानूनी कारवाई से पति से अलग रहने लगती है । लेखिका ने स्वयं के साथ हो रहे अत्याचारों के विरुद्ध सदैव बुलंद आवाज़ करके प्रतिरोध किया। उन्होंने कुंठित जीवन जीने की अपेक्षा अपने अधिकारों के

लिए लड़ने की सीख दी है। लेखिका ने अपने साथ – साथ अनेक अन्य स्त्रियों के साथ होने वाले गंभीर अत्याचारों का भी उल्लेख किया है। बस्ती में रहने वाले सखाराम का अपनी पत्नी के साथ किया जाने वाला व्यवहार अत्यंत ह्रदयविदारक है । दिहाड़ी पर मजदूरी करने वाली पत्नी के साथ अन्य पुरुष द्वारा छेड़खानी होने पर उस बाहरी पुरुष को दंड ना देकर अपनी पत्नी के साथ ही क्रूरता बरती जाती है । "थोड़ी देर बाद सखाराम की औरत को बाहर लाया गया उसके बदन पर सिर्फ चोली थी और वह छोटा सा कपड़ा पहने थी।उसके माथे पर सफेद बिंदी लगाई गई और उसके गले में चप्पलों की माला पहनाई गई ,और उसे गधे पर बिठाकर पूरी बस्ती में घुमाया गया।"अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए कुछ पुरुष बिना किसी गलती के भी स्त्री को ही दोषी ठहराते हैं । इस पर रचनाकार प्रतिक्रिया जताती हैं –"यानी आदमी के सब अपराध माफ। मैं हैरान रह गई ,औरतें भी औरतों का साथ नहीं दे रही थीं, चुपचाप तमाशा देख रही थी।"

इस प्रकार कौसल्या बैसंत्री ने समाज और परिवार के जिस दोहरे तिहरे संतप्त को झेला उससे प्रेरणा लेकर अन्य दलित स्त्रियों को जागृत करने के लिए 'दलित महिला जागृत परिषद',महिला संमता समाज'जैसी संस्थाएं प्रस्थापित की । तत्पश्चात् अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के उपलक्ष्य में दलित महिलाओं की समस्याओं पर विचार विमर्श करने के लिए कार्यक्रम का भी आयोजन किया ।ऑल इंडिया प्रोग्रेसिव विमेनस एसोसियेशन द्वरा भी जब सेमीनार करवाए गए, वहाँ भी आत्मकथाकर को दुखद अनुभवों का सामना करना पड़ा ।उनके अनुसार सेमीनार में भी किसी व्यक्ति द्वरा दलित स्त्रियों के हित की बात ना करना उनके लिए निराशाजनक था। किन्तु फिर भी वह दलित स्त्रियों के जीवन को अर्थ देने के लिए अथक प्रयास करती रहीं । वह उन्हें प्रेरित करते हुए संदेश देती हैं कि –"अगर हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते हैं,तब हमें अपने पाँव पर खड़ा होकर अपने पर भरोसा रख कर आगे बढ़ना होगा।हमें अपने अंदर शक्ति पैदा करनी होगी। किसी का सहारा लेकर चलने से काम नहीं बनेगा, यहीं वह मूलमंत्र है जो स्त्री सशक्तिकरण की राह को आसान कर सकता है।"

आंतरिक दृढ़ता के बल पर कोई भी समाज प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर स्वावलंबन का जीवन जी सकता है।

निष्कर्ष :

कहा जा सकता है कि दोहरा अभिशाप न केवल एक बैसंत्री की आत्मकथा है, बल्कि दलित स्त्री जीवन के संघर्षों का एतिहासिक दस्तावेज़ है। रचनाकार के लिए ये घटनाएँ सिर्फ व्यक्तिगत पीड़ा नहीं थीं,वरन् उस व्यवस्था का चित्रण थीं, जिसमें दलितों और स्त्रियों को समान अधिकार एवं सम्मान प्राप्त नहीं था।विशेषकर दलित स्त्रियाँ जो हाशिये के भीतर भी एक और हाशिये का जीवन व्यतीत करने को विवश हैं ।लेखिका ने स्वयं के अनुभवों के माध्यम से सिद्ध किया है कि संघर्ष,शिक्षा और आत्मविश्वास के बूते पर दलित स्त्री या कोई भी समाज की स्त्री अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकती है।

संदर्भ

1.सुशीला टाकभौरे, हाशिए का विमर्श पृ-99
2.कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप (आत्मकथा),भूमिका से पृ-8
3.वहीं-पृ-8
4.वहीं-पृ-19
5.वहीं-पृ-29
6.वहीं-पृ-64
7.वहीं-पृ-59
8. वहीं-पृ-41
9. वहीं-पृ-53
10.https://www.aajtak.in/india/news
11.कौसल्या बैसंत्री, दोहरा अभिशाप (आत्मकथा)पृ-61
12.वहीं पृ-78
13.वहीं पृ-91
14.वहीं पृ-92
15.वहीं पृ-72
16.वहीं पृ-72
17.वहीं पृ-124